Gyanvividha [A Peer Reviewed and Refereed Journal] July-September 2024 : Year-1, Issue-4 : PP-45-51

ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
July-September 2024 : 1(4)45-51
©2024 Gyanvividha
www.gyanvividha.com

रितु प्रिया
शोध-छात्रा, हिंदी,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

Corresponding Author :
रितु प्रिया
शोध-छात्रा, हिंदी,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० सतीश कुमार राय की संपादन दृष्टि

बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० सतीश कुमार राय का जन्म 1962 ई० में पश्चिमी चम्पारण के बेतिया नगर में हुआ था। ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाले डॉ० राय ने के० आर० उच्च विद्यालय, बेतिया से मैट्रिक किया। महारानी जानकी कुँवर महाविद्यालय, बेतिया से 1980 ई० में प्रथम श्रेणी से इंटर कला और 1982 ई० में प्रथम वर्ग में प्रथम स्थान लाते हुए स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की | 1984 ई० में बिहार विश्वविद्यालय से इन्होंने स्वर्ण पदक प्राप्त करते हुए हिन्दी में एम०ए० किया। कुछ दिनों तक इन्होंने अविभाजित बिहार के प्रसिद्ध विद्यालय नेतरहाट में अध्यापन किया, मार्च 1990 ई० में मगध विश्वविद्यालय सेवा के अन्तर्गत इनकी नियुक्ति हुई। दिसम्बर1993 ई० में ये बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में आए। 1998 ई० में रीडर और 2006 ई० में प्रोफेसर बने। इन्हें अनेक सम्मान प्राप्त हैं, जिनमें- बिहार सरकार का साहित्य सेवा सम्मान, संचेतन सम्मान, परिवर्तन संस्था द्वारा प्रदत सम्मान, चम्पारण रत्न सम्मान, चम्पारण साहित्य साधना सम्मान आदि उल्लेखनीय है।

डॉ० राय ने संपादन के कार्य क्षेत्र में भी अपना परचम लहराया है। ये सफल शिक्षक, सुयोग्य संपादक के रूप में मान्य रहे हैं।

सतीश कुमार राय की संपादन यात्रा 1978 से प्रारंभ हुई। 1978 में उन्होंने विद्यार्थी परिषद् की बेतिया शाखा के 'बुलेटिन सावधान' का संपादन किया। वह दौर छात्र आन्दोलन का दौर था। तत्कालीन मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर ने जो आरक्षण नीति लागु की थी, उसके पक्ष-विपक्ष में आन्दोलन हो रहे थे। बुलेटिन के प्रवेशांक में उनका विचारोत्तेजक संपादकीय छपा "आरक्षणः कितनी रक्षा कितना भक्षण" इसमें आरक्षण को पूरी पारदर्शिता और प्रमाणिकता के साथ लागू करने की वकालत की गई। बुलेटिन का दूसरा अंक प्रेस में ही रह गया। पहले अंक की सामग्री पर प्रशासन ने एतराज किया। तत्कालीन पुलिस अधीक्षक वीडी० राम ने संपादक को तलब किया और उन्हें राजनीति से अलग रहकर पढ़ने की प्रेरणा दी। ध्यातव्य है कि उस समय राय जी इन्टर के विद्यार्थी थे। 1979 में वे हिन्दी पाक्षिक 'अनल शिखा' के संयुक्त संपादक बने। 'अनल शिखा' साहित्यिक कलेवर वाला पत्र था। 1981 में उन्होंने 'सारंग सुधा' पाक्षिक का

प्रकाशन शुरू किया। इस पत्र में ये संपादकीय सलाहकार रहे। 'सारंग सुधा' उस समय के श्रेष्ठ साहित्यिक पत्र के रूप में मान्य हुआ। 1984 में इस पत्र का दायित्व उन्होंने मिथिलेश गिरी को सौंप दिया।

1982 में डॉ. राय के संपादन में पश्चिमी चम्पारण के चौदह कवियों का प्रतिनिधि संग्रह 'उगते सूरज की भूख' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। संपादकीय में उन्होंने लिखा-"यह संकलन पूर्णतः काव्य जगत में प्रविष्ट हो रहे उन कवियों की रचनाओं का संकलन है, जो हिन्दी साहित्य के लिए पूर्णतः अपरिचित हैं। विज्ञापन की दुनिया से दूर साहित्य-साधना में लीन रहने वाले रचनाकारों की साहित्यिक मान्यता के इस दस्तावेज को पाठकों के हाथ में सौंपते हुए मुझे काफी हर्ष हो रहा है। मेरे हर्ष की मात्रा को पाठकों की सहानुभूति का कितना बल प्राप्त होगा, यह भविष्य ही बतलायेगा। लेकिन साहित्याकाश में 'उगते सूरज की भूख' को वे अपनी उदार प्रेरणा का आहार प्रदान करेंगे; ऐसा विश्वास है।

कविता के मूल्यों को काव्य-शास्त्र की कसौटी पर आंकने वाले परम्परावादी आलोचकों से भी मैं एक बात कह देना चाहता हूँ कि यह संकलन साहित्याकाश में नवोदित कवियों के उन्मेष को दिखलाने का प्रयास है। अतएव आप इसे शिशु की तुतलाहट भी मान सकते हैं। और बालारूण की भास्वरता भी । यति-गति, मात्रा और गण-विधान की परिधि से अलग हटकर भाव के धरातल से मैंने इन कविताओं को देखने, समझने और संकलित करने का प्रयास किया है। अतः आप से भी अनुरोध है कि आप द्वन्दशास्त्र की पुरानी परम्पराओं से अलग हटकर भाव की प्रखरता और अभिव्यक्ति की सशक्तता को दृष्टिगत करते हुए इनका मूल्यांकन करें।"[1]

इस संग्रह की भूमिका लिखते हुए डॉ. बलराम मिश्र ने लिखा है- "इस संग्रह में उनकी रचनायें है जो दस वर्ष पूर्व स्नातक की उच्च डिग्री लेकर रामनामी साहित्य, विदेसिया नाटक तथा कामसूत्र के आधुनिक संस्करण बेचने पर मजबूर हैं और जिजीविषा की कल्पना के पंखों में धरती की धूल ढूंढ़ने के प्रयास में रत हैं। यदि संभव हो तो आधुनिक नपुंसक संस्कृति में पलीता लगा देने में भी हिचक नहीं है। इसमें ऐसे लेखक की रचनायें भी हैं, जो शिक्षक के रूप में आदर्श बांटने में जीवन की सार्थकता ढूंढ़ते हैं और मानव को सत्पथ पर उत्प्रेरित करते हुए एक आदर्श लोक की कल्पना में तल्लीन हैं। ऐसे नवयुवकों की रचनायें भी हैं, जो अपने समव्यस्कों को सत्प्रेरण देकर प्रतिभा की चिनगारी दावाग्नि में परिवर्तित कर देने के दृढ़ संकल्पी हैं। ऐसे नवीनों की रचनायें भी इसमें संकलित हैं, जो नयी भूमि तोड़कर संकल्प का नया बीज वपन करना चाहते हैं किन्तु, इस तथ्य से अज्ञात हैं कि असमय की कुवर्षा या समय का अघर्षण उन्हें अंकुरित नहीं होने देगा। ऐसे नवयुवकों की रचनायें भी हैं, जो आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण की 'बॉल्ड-डान्सी' मनोवृत्ति के नपुंसक थिरकन से आक्रांत होने के लिए मजबूर हैं। इसमें ऐसे किशोरी की रचनायें भी हैं, जो नूतन बसन्त में सद्यः प्रस्फुटित कली की कृत्रिमता से अनभिज्ञ हैं किन्तु, उन्हें लालच भरी निगाह से बसन्त का सन्देश समझ रहे हैं। किन्तु इन सारी रचनाओं में एक बात सर्वव्यापिनी है कि सभी अनन्त-असीम जिजीविषा की उत्कंठ अभिलाषा से उत्प्रेरित हैं। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की पंखुड़ियों को नये सूरज की प्रखरता में प्रस्फुटित कर देना चाहते हैं। ऐसी प्रवृत्ति का तो स्वागत होना ही चाहिए। यद्पि वे इनसे अनभिज्ञ हैं कि बसन्त आने से पूर्व पतझड़ का आगमन हो जाता है, वर्षा की बूंदों की फुहारों से पूर्व ही ग्रीष्म की चिलचिलाती तपन की प्रचंडता ही अनिवार्य है। किन्तु इनकी जिजीविषा को रोके कौन? आखिर भविष्य की संभावनाएँ भी तो इन्हीं में निहित है। वर्तमान के घटाटोप अंधकार का हृदय विकीर्ण कर प्रतिभा की नयी किरण का प्रखर तीर लक्ष्य की ओर अविराम बढ़े, यही कामना है, मंजिल तो मिलेगी ही।"[2]

डॉ० मिश्र ने आगे लिखा है-"प्रस्तुत संकलन के सम्पादक ने रचनाओं का जो क्रम रखा है वह मूल भाव के सादृश्य पर आधारित है। इससे संपादन की मौलिकता की झलक मिलती है। एक ही रचनाकार की अनेक रचनाओं में से कुछ रचनाओं को चुन लेना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है, फिर भी संपादक ने अपने विवेकपूर्ण कौशल से किसी की तीन, किसी की दो और किसी की एक रचना को संकलन में स्थान दिया है। चयन और क्रम - नियोजन में विवेक का आधार है, जिससे एक प्रकार की रचनायें एक ही क्रम में आ गई है। इससे यह बात प्रमाणित है कि किसी विशेष आग्रह - से नहीं बल्कि विविधता का ध्यान रखते हुए रचनाओं का चयन हुआ है। सबसे पहले 'भिति कण्ठ' की रचनायें हैं जो छायावादी काव्य प्रवृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। फिर वे रचनायें जो आधुनिक युग की प्रवृत्तियों

का प्रतिनिधित्व करती हैं। वर्तमान समाज की विसंगतियों पर कुठाराघात करने वाली रचनायें छायावादी प्रवृत्ति के तुरंत बाद रखी गयी हैं, जबकि प्रेम-वियोग, आशा-निराशा की प्रवृत्तियों से युक्त रचनायें इसके पूर्व ही आ सकती थीं। फिर भी युगधर्म के निर्वाह के लिए तथा कवियों की सशक्तता को ध्यान में रखते हुये आक्रोश की कविताओं को महत्त्व देना स्वाभाविक ही है। 'कलाधर' की कवितायें इनका प्रतिनिधित्व करती हैं। तत्पश्चात् निराशा, तन्हाई, अकेलापन के एहसास से युक्त कविताओं को स्थान मिला है। ये प्रवृतियाँ समाज की विश्रृंखलता को देखकर ही उत्पन्न हुई हैं किन्तु, इनमें त्वरा के स्थान पर शिथिलता है, आक्रोश के स्थान पर यथास्थिति कायम रखने की निष्क्रियता है, एक प्रकार का आलस्य है। अन्त में वे कविताएँ हैं जो प्रयोग धर्मिता की दृष्टि से अपनी शैशवावस्था में है। रचनाओं का क्रम उनके युग धर्म के निर्वाह और कला के उत्कर्ष के आधार पर रखा गया है जो पूर्णत: औचित्य से युक्त है। संपादक ने अपनी रचनाओं को अंत में रखकर अपनी विनम्रता का सरल-सहज परिचय दिया है। जबकि कला की दृष्टि से उन्हें और ऊँचा स्थान मिलना चाहिए था। कुल मिला मिलाकर इस संकलन का सम्पादक सुरुचिपूर्ण, विवेकयुक्त एवं शील- सौजन्य से परिपूर्ण है।"[3]

इस प्रकार यह पहली संपादित कृति ही उनके संपादन विवेक का साक्ष्य देती है। इस पुस्तक का जब प्रकाशन हुआ तो वे स्नातक के विद्यार्थी थे। 1993 में उन्होंने 'साहित्य कुंज पुस्तक माला' के अन्तर्गत युवा कवि सुबोध शंकर की कविताओं का संग्रह 'सन्नाटो के बीच' का संपादन किया। इस संग्रह का सम्पादकीय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस सम्पादकीय में सुबोध शंकर के कवि कर्म का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। और उनकी संभावनाओं को उजागर भी किया गया है।

1992 में उन्होंने डॉ. बलराम मिश्र के साथ 'नेपाली की काव्य चेतना' शीर्षक आलोचनात्मक ग्रन्थ का संपादन किया। इस सम्पादकीय निवेदन में कहा गया है- "यह पुस्तक मुख्यतः कवि नेपाली को ध्यान में रखकर तैयार की गई है, वैसे इसमें साहित्यकार नेपाली की उपेक्षा भी नहीं है। इसीलिए उनके गद्य-साहित्य, पत्रकार रूप आदि के विवेचन को भी 'परिशिष्ट'के अन्तर्गत इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। साथ ही नेपाली पर प्रकाशित तीन पुस्तकों में से दो की समीक्षा (पहली पुस्तक 'स्वाधीन कलम नेपाली' की समीक्षा 'गोपाल सिंह नेपाली: जीवन और साहित्य' में की जा चुकी है) भी इसके परिशिष्ट में सम्मिलित है। इस प्रकार हमने इसे आलोचना-ग्रन्थ के साथ सन्दर्भ ग्रन्थों के रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। नेपाली की आरम्भिक असंकलित रचनाएँ जैसा लेख हमारे इसी प्रयत्न का प्रमाण है।

इस पुस्तक में नेपाली की राष्ट्रीय चेतना पर एक साथ डॉ. रेवती रमण और मोहम्मद निजामुद्दीन का लेख देना अकारण नहीं है। आज हम जब अलगाववादी ताकतों से जूझ रहे हों, तो किसी 'वन मैन आर्मी' की राष्ट्रीयता मूलक कविताएँ न केवल हमें प्रेरणा देगी अपितु शक्ति और साहस भी देंगी। आज राष्ट्रीयता की और उसके संदर्भ में नेपाली की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए ही हमने यह दुस्साहस किया है।

इस पुस्तक में चाहते हुए भी, हम कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर लेख नहीं दे पाये हैं। ऐसे विषयों में नेपाली की राजनीतिक चेतना और फिल्मी गीतों के नाम लिए जा सकते हैं। फिर भी, अंतिम लेख द्वारा हमने इस महत्व को रेखांकित करने का प्रयास अवश्य किया है। इतना ही नहीं, नेपाली की पत्रकारिता पर भी हम परिचयात्मक सामग्री से अधिक कुछ नहीं दे पाये हैं। ये सारी सीमायें हमारी हैं, हमारी विवशता और साधनहीनता ही है। हमें इसके लिए खेद है। फिर भी हमें अपने लेखकों के श्रम पर संतोष है, विश्वास और अभिमान भी है। इस संकलन की सारी उपलब्धियाँ उनकी हैं और सारी- कमियाँ हमारी।"[4]

1996 में डॉ० राय ने 'अन्वेषक' शीर्षक से शोध और समीक्षा केन्द्रित अनियतकालीन पत्रिका का सम्पादन किया। इस पत्रिका के तीन ही अंक निकले। तीसरे अंक की विज्ञप्ति में डॉ. राय ने लिखा- "शोध और आलोचना को रचनात्मक संदर्भ देने एवं नयी रचनाधर्मिता तथा शोध-प्रज्ञा को संरक्षित और सम्बर्द्धित करने के उद्देश्य से 1996 ई० से 'अन्वेषक' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हमने यथासम्भव इस पत्रिका को सार्थक-संवाद मंच बनाने की कोशिश की, स्थापितों और नवोदितों को साथ प्रकाशित किया और यह चेष्टा की कि रचना-आलोचना के बीच निरंतर संवाद हो। हमारी इस कोशिश को अशोक वाजपेयी, मंगलेश डबराल, गिरधर राठी जैसे सर्जकों और साहित्य-चिन्तकों का सहयोग और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। युवा आलोचक डॉ. रेवती रमण ने आगे बढ़कर हमारा सहयोग

किया। इसके बावजूद, अपनी अस्त-व्यस्तता के कारण मैं पत्रिका को नियमित नहीं बना सका। प्रस्तुत अंक मेरे सम्पादन में प्रकाशित होनेवाला अन्तिम अंक है। आगे मेरे मित्र और समीक्षा प्रकाशन के प्रबन्ध निदेशक डॉ. राजीव कुमार, जो इस पत्रिका के प्रकाशक भी हैं, इसके सम्पादन हेतु नया प्रबन्ध करेंगे।

यह अंक शोध पर केन्द्रित है और इसे युवा-शोध विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। मानविकी, समाज विज्ञान और वाणिज्य से सम्बद्ध इसमें सम्मिलित अट्ठारह शोध-पत्र कितने मानक और खोजपरक हैं, यह निर्णय तो विद्वानों को करना है, किन्तु कुछ नया खोजने की बेचैनी मैंने इन शोध-पत्रों में महसूस की है। यह बेचैनी यदि चिन्तन का रूप ले सकी तो निश्चित रूप से शोध का भविष्य उज्ज्वल होगा।

इस अंक के प्रकाशन के साथ मैं अपने सहयोगियों एवं पाठकों से विदा ले रहा हूँ। मैं उन समस्त-लेखकों और पाठकों के प्रति आभारी हूँ, जिनके सहयोग और प्रोत्साहन ने मुझे शक्ति दी है। 'अन्वेषक' दीर्घायु हो और अपने उद्देश्यों के प्रति संकल्पित भी। इसी मंगलकामना के साथ मैं दायित्व-मुक्त होने की अनुमति मांग रहा हूँ। लेखक के रूप में 'अन्वेषक' से मैं जुड़ा रहूँगा, इसी वचनबद्धता के साथ – सतीश कुमार राय।"[5]

'अन्वेषक' के तीनों अंक शोध सामग्री के प्रकाशन के कारण उल्लेखनीय है। 1999 में उन्होंने 'शार्ङ्' अनियतकालीन साहित्यिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का एक ही अंक निकल सका। 'धरोहर','विश्व साहित्य' और 'साक्षात्कार' इसके महत्वपूर्ण स्तंभ थे। इसमें डॉ. प्रमोद कुमार सिंह का साक्षात्कार छपा और उनकी लम्बी कविता भी। प्रो. सिंह ने अपने साक्षात्कार में शोध की दशा और दिशा पर खुल कर विचार व्यक्त किये थे। इसमें रूसी साहित्य पर भी विशेष सामग्री थी। प्रपद्यवाद के तीसरे कवि नरेश की अप्रकाशित कविताएँ भी इसमें प्रकाशित की गई थी। 2011 में उन्होंने 'शोध-निकष' शीर्षक से अर्धवार्षिक शोध पत्रिका का संपादन किया। इसका पहला अंक फरवरी-जून 2011 प्रकाशित हुआ। दूसरे अंक के सम्पादकीय में उन्होंने शोध-पत्रकारिता का विकास क्रम रेखांकित किया। डॉ. राय ने लिखा- "भारत में शोध की प्रक्रिया एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना से प्रारम्भ हुई। 1783 ई० में सर विलियम जोन्स सुप्रीम कोर्ट के जज के रूप में भारत आये, तो उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की पहल की। कोलकाता में सोसाइटी का मुख्यालय बना और 1780 में एशियाटिक रिसर्चेज नामक जर्नल प्रकाशित हुआ। भारत में यह शोध पत्रकारिता का पहला उन्मेष था। ध्यातव्य है कि भारतीय पत्रकारिता 1780 में अगस्टस हिकी के 'बंगाल गजट ऑफ केलकटा जनरल एडवरटाइजर' के प्रकाशन के साथ अस्तित्व में आई थी। यह एक सुखद संयोग है कि इस पहले भारतीय पत्र (मुगलकाल के हस्तलिखित अखबारों को यदि छोड़ दिया जाय) के प्रकाशन के आठ वर्ष बाद ही शेष पत्रकारिता का भी श्री गणेश हुआ। इस संस्था ने 'इंडियन रिव्यू एण्ड जर्नल ऑफ फॉरेन साइंसेज' का प्रकाशन किया। 1839 ई० में दोनों पत्रिकाओं का विलय हो गया और 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। निश्चित रूप से इस जर्नल ने भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य से सम्बद्ध अनेक महत्वपूर्ण-पत्रों का प्रकाशन किया। इसमें संस्कृति, पुरातत्त्व, समाज-शास्त्र आदि से सम्बद्ध सामग्री का भी प्रकाशन हुआ। सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का विशद शोधपत्र 'दि मार्डन मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' एशियाटिक सोसाइटी जर्नल में ही 1880 ई० में प्रकाशित हुआ। 1889 में यह पुस्तकाकार छपा। कविराजा श्यामलदास और मुरारिदान के शोधपत्र इसी जर्नल में छपे, जिसमें उन्होंने पृथ्वीराज रासों को अप्रमाणिक ग्रन्थ घोषित किया था।"[6]

इस सम्पादकीय में उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', सम्मेलन पत्रिका', 'साहित्य', 'ज्योत्सना', 'गंगा', 'आलोचना', 'दस्तावेज', 'समीक्षा', 'पुर्वग्रह' आदि पत्रिकाओं का उल्लेख किया है। सम्पादकीय के अंत में उन्होंने लिखा है- इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शोध-पत्रकारिता की एक सुदीर्घ परम्परा है और सीमित पाठक वर्ग के बावजूद यह विकसित होती रही है। इसलिए 'शोध निकष' का यह दावा नहीं है कि उसने एक अभाव की पूर्ति कर ली है और अपनी एतिहासिक पहल का भ्रम पालकर मुग्ध हो गया है। यह पत्रिका एक खोजपूर्ण यात्रा में सहयात्री बनने के संकल्प के साथ निकल रही है। इसका यह दूसरा अंक पाठकों को सौंपते हुए मैं संतुष्ट हूँ। एक शिक्षक होने के नाते मेरा दायित्व है कि मैं शोध की समृद्धि में अंशदान करू- लेखन द्वारा भी, संयोजन द्वारा भी और

उत्प्रेरण द्वारा भी। 'शोध निकष' में यह अंशदान कितना सार्थक है यह मैं नहीं जानता किन्तु अपनी ओर से मैनें ईमानदार कोशिश अवश्य की है। स्थापितों के लिए बहुत सारी पत्रिकाएँ हैं, बहुत सारे मंच हैं किन्तु, जो नये हैं, सीख रहे हैं, उन्हें भी अवसर मिलना चाहिए। इस अंक मे संकलित अनेक शोध आलेख शोध के क्षेत्र में आते हुए लोगों के हैं। अतएव इनमें त्रुटियाँ हो सकती हैं, लिजलिजापन हो सकता है, किन्तु इनमें संकल्प है और कुछ करने की विकलता भी। मुझे विश्वास है कि आप शोध के इन नवांकुरों को अपनी प्रेरणा से अभिसिंचित करेंगे और उन्हें आने वाले कल का मौलिक शोधकर्ता और आलोचक बनने का मार्ग देंगे।

इस अंक में पत्रकारिता और दलित चेतना पर अधिक शोध-पत्र है। आज ये दोनों क्षेत्र विमर्श का केन्द्र बनते जा रहे हैं। अतः हमने केन्द्र से परिधि की ओर की यात्रा पर विशेष बल दिया है। 'शोध निकष' में दो स्थायी स्तम्भ हैं- 'विरासत' और 'शख्सियत'। 'विरासत' के अन्तर्गत हम किसी पुराने किन्तु महत्त्वपूर्ण शोध-आलेख का पुनर्प्रकाशन करेंगे और 'शख्सियत' के अन्तर्गत किसी सिद्ध शोधकर्ता का शोध-पत्र टिप्पणी सहित प्रस्तुत करेंगे। 'विरासत' हम इस अंक में छाप रहे हैं; 'शख्सियत' अगले अंक से देंगे।

यह शोध-पत्रिका अभी निर्माण की प्रक्रिया में है। इसके कदमों में डगमगाहट हो सकती है किन्तु इसकी आँखों में सपनों की कमी नहीं है। आप स्नेह देंगे तो ये सपने रूप ग्रहण करेंगे, आप सुझाव देंगे तो हमारे कदमों में शक्ति आएगी, आप आशीर्वाद देंगे तो हम दौड़ते हुए लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। हमारा लक्ष्य है शोध के क्षेत्र में नवागंतुकों का प्रशिक्षण, शोध की विरासत का संरक्षण और इस क्षेत्र में काम करने वालों के लिए मंच और साधनों का संवर्धन। आपका लक्ष्य भी शायद यही है, तो आइये हम मिलकर एक नई पहल करें, एक नया प्रारम्भ करें, एक नई प्रतिज्ञा करें- शोध को प्रमाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए, इस क्षेत्र को साधनादीप्त करने के लिए और उच्च शिक्षा की गुणवता को बनाये रखने के लिए भी।"[7]

2015 में उन्होंने बी.आर. अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय से निकलनेवाली शोध पत्रिका 'शोध मनीषा' का संपादन किया। 'शोध मनीषा' का दूसरा अंक 2021 में प्रकाशित हुआ।

'शोध मनीषा' प्रवेशांक के सम्पादकीय में डॉ. राय ने बिहार में सोपाधि शोधकार्यों का विकासक्रम रेखांकित करते हुए लिखा है- "बिहार में सोपाधि शोधकार्य का श्रीगणेश पटना विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ। ज्ञातव्य है कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना 1917 ई० में हुई थी। 1944 ई० में इस विश्वविद्यालय से सुभद्रा झा ने 'मैथिली का विकास' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। 'बिहारी भाषाओं का विकास' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर नलिनी मोहन सान्वाल को कलकता विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि मिली। हिन्दी विषय में एम. ए. की उपाधि पाने वाले विद्यार्थी भी सान्वाल ही थे।

1952 ई० में बिहार विश्वाविद्यालय की स्थापना हुई जो आज बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। बिहार विश्वविद्यालय के नाम से हिन्दी में पीएच०डी० की पहली उपाधि भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव को उनके शोध-प्रबंध 'रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना' पर 1959 ई० में मिली। उनके शोध निर्देशक थे विश्वविद्यालय विद्वान् महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज और बाह्य परीक्षक थे डॉ. माता प्रसाद गुप्त और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र। यह प्रबन्ध बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से प्रकाशित है। माधव जी का जन्म 1907 ई० में हुआ था। उन्होंने मगध विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निर्देशक के रूप में अपनी अविस्मरणीय सेवाएँ दी। 'वैष्णव साधना और सिद्धांत :हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' उनकी दूसरी महत्वपूर्ण शोध कृति है। 1959 ई० में ही कामेश्वर प्रासाद सिंह ने 'प्रसाद की काव्य-प्रवृति' से बिहार विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

इस विश्वविद्यालय से हिन्दी में पहला डी.लिट्. जानेमाने गीतकार और शिक्षाविद श्यामनन्दन प्रसाद किशोर ने किया। मूर्धन्य विद्वान धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के मार्गदर्शन में उन्होंने अपना शोधकार्य सम्पन्न किया। उनका विषय था 'आधुनिक महाकाव्यों का शिल्प-विधान और उनके बाह्य परीक्षक थे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी। किशोर जी को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का सीनियर फेलोशिप (1962-1964 ई०) और नेहरू फेलोशिप (1974-1976 ई०) मिला था। उनके अन्य शोध ग्रन्थ हैं 'हिन्दी नाटकों में मानव-मूल्य', 'हिन्दी साहित्य: शोधात्मक निष्कर्ष' और 'छायावादी काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।"[8]

पत्रिका के उद्देश्य और कलेवर पर प्रकाश डालते हुए डॉ. राय ने आगे लिखा है -'शोध-मनीषा' अपनी परम्परा को परखते हुए शोध की दिशा में आगे बढ़ने के संकल्प के साथ प्रकाशित हो रही है। प्रवेशांक का कच्चापन इसमें परिलक्षित हो सकता है किन्तु हमारी जिजीविषा की गूंज भी इसमें सुनी जा सकती है। 'विरासत' और 'धरोहर' के अन्तर्गत हमने प्रोफेसर कामेश्वर शर्मा और हंस कुमार तिवारी के शोध आलेखों का पुनर्प्रकाशन किया है। ये दोनों पुराने आलेख अपनी प्रखर शोध दृष्टि, तार्किकता और विश्लेषण - क्षमता के कारण विशिष्ट हैं। 1952 में अपनी विवादित पुस्तक 'दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि' के माध्यम से चर्चा में आये प्रोफेसर शर्मा (1926-1994 ई०) 1952 ई० से जनवरी 1986 ई० तक लंगट सिंह महाविद्यालय और बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के यशस्वी और लोकप्रिय प्राध्यापक रहे। 'हिन्दी की समस्याएँ', 'बोध और व्याख्या', 'शिखण्डी'(उपन्यास) उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 1955 ई० में उनकी शोध परक पुस्तक 'हिन्दी साहित्य को बिहार की देन' का पहला खण्ड प्रकाशित हुआ। पुस्तक के महत्त्व को रेखांकित करते हुए प्रो० नवल किशोर गौड़ ने लिखा "हिन्दी साहित्य को बिहार की देन मेरे लिए केवल इसीलिए उत्कंठा जनक पुस्तक नहीं है कि इसके लेखक प्रो० कामेश्वर शर्मा की प्रतिभा का प्रतिफलन मेरे लिए आनन्द की वस्तु रही है, वरन् इसलिए भी कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा की गई बिहार की साहित्यिक सेवाओं की ऐतिहासिक उपेक्षा के निराकरण का यह प्रथम प्रयत्न भी है। इसीलिए जैसे 'मैला आंचल' ने मुझे मुग्ध कर लिया था, इस रचना ने भी मुझे अभिभूत कर रखा है"। ज्ञातव्य है कि प्रो० शर्मा ने 1963 ई० में 'भागलपुर जिले की भाषाः एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

हंस कुमार तिवारी (1918-1980 ई०) उत्तर छायावाद के प्रतिनिधि कवि, कला मर्मज्ञ और अधिकारी विद्वान रहे हैं। उनका शोध आलेख 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य को बिहार की देन' 1962 ई० में पटना में आयोजित 67वां भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित 'अभिज्ञान ग्रन्थ' में छपा था। तिरपन वर्षों के अन्तराल के बावजूद यह आलेख अप्रासांगिक नहीं है। आरम्भ से अपने रचनाकाल तक के विकास की दिशाओं को इसमें प्रभावशाली ढंग से रेखांकित किया गया है।

इस अंक में सम्मिलित शोधप्रज्ञ और आलोचक प्रायः स्थानीय विद्वान हैं। हमने कुछ नये लेखकों को स्थान देकर संवाद के लिए एक मंच देने का प्रयास किया है। आशा है यह प्रयास बुरा नहीं लगेगा।"[9]

दूसरे अंक के सम्पादकीय में रेवती 'रमण' के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए डॉ. राय ने लिखा है-" इस अंक में पहला लेख हिन्दी आलोचना को व्यापक दृष्टि और सार्थक दिशा देनेवाले शीर्षस्थ आलोचक डॉ. नामवर सिंह (28 जुलाई, 1926-19 फरवरी, 2019) पर है। नामवर सिंह का स्नेह हमारे विभाग को निरन्तर मिलता रहा है। राष्ट्रीय संगोष्ठियों और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में उनके आगमन से हम धन्य होते रहे हैं। उनके निधन से हमने अपना एक सहृदय अभिभावक खो दिया है। नामवर जी की कृतियाँ हमारे लिए अमूल्य धरोहर हैं। ये हमें बौद्धिक संवाद के लिए, रचना के मर्म तक पहुंचने के लिए प्रेरित करती रहेंगी। उन पर हमारे विभाग के पूर्व अध्यक्ष और हिन्दी आलोचना को संवादी स्वर देनेवाले आचार्य प्रोफेसर रेवती रमण (16 फरवरी, 1955- 17 मई, 2021) ने लिखा है- 'हिन्दी का सबसे नामवर समालोचक'। इस आलेख द्वारा हम नामवर जी के महत्व का, उनके अविस्मरणीय योगदान का स्मरण भी कर रहे हैं और रेवती जी को श्रद्धांजलि भी अर्पित कर रहे हैं। नामवर जी की तरह रेवती जी भी ग्रामीण पृष्ठभूमि से निकले थे, दोनों मूलतः भोजपुरी भाषी थे। दोनों ने छात्रजीवन में कविता से ही अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत की थी। रेवती जी नामवर जी को ही अपना प्रेरक मानते थे। 1983 से रेवती जी की पुस्तक, समीक्षाएँ और आलोचनात्मक टिप्पणियाँ महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं। उनका पहला आलोचना संग्रह 'कविता और मानवीय संवेदना' 1991 ई० में राजेश प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों की काव्य- संवेदना को रेखांकित किया गया था। उनकी दूसरी पुस्तक 'समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य' 1994 ई० में प्रकाशित हुई थी। उनकी अन्य आलोचनात्मक पुस्तकें हैं – 'कविता का समकाल' (रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, 1999 ई०), 'महाकाव्य से मुक्ति' (अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई०), 'जातीय मनोभूमि की तलाश' (भारतीय ज्ञानपीठ, 2005 ई०), 'सर्जक की अंतर्दृष्टि' (समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर 2007 ई०), 'परम्परा का पुनरीक्षण' (समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर 2016 ई०), 'उजाड़ में आवाज के परिन्दे' (अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2018 ई०), 'सृजन और विभावन का द्वैताद्वैत'

(नयी किताब प्रकाशन, 2020 ई०), 'साध के अनुरूप सृजन' अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर 2021)। इनके अतिरिक्त साहित्य अकादमी के लिए उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त और त्रिलोचन पर विनिबन्ध भी लिखे हैं। उनकी छात्रोपयोगी पुस्तकें हैं- 'भारत दुर्दशा : कथ्य और शिल्प' (अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ई०), 'प्रसाद और स्कंदगुप्त' (अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई०), 'चिन्तामणि - प्रकाश (अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई०) । निराला पर उनकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है – 'काव्य विमर्श निराला'। यह पुस्तक रेवती जी की समाहार शक्ति का प्रमाण है। निराला सम्बन्धी आलोचनाओं से सारतत्व लेकर उन्होंने मौलिक उद्भावनाएँ भी की है। 'हिन्दी आलोचना बीसवीं शताब्दी' (अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 ई०) भी एक उल्लेखनीय कृति है। समकालीन हिन्दी आलोचना और कविता को नयी अर्थवत्ता देनेवाले 'विश्वनाथ प्रसाद तिवारी: एक मूल्यांकन' में उनकी आलोचना दृष्टि का फैलाव देखा जा सकता है। एक सम्पादक के रूप में भी रेवती जी का विशिष्ट योगदान रहा है। 'उत्तम पुरुष', 'बेड़ियों के विरुद्ध; सदी का महाराग', 'सप्रस्वर', 'कल्पतरू', 'आधुनिक भारतीय कविता', 'विश्वनाथ प्रसाद तिवारी रचना संचयन' उनके द्वारा सम्पादित महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। रेवती जी का असामयिक निधन हमारे विभाग के साथ पूरे आलोचना जगत् के लिए अपूरणीय क्षति है। काश ! वे अपना लेख प्रकाशित रूप में देखते। इस लेख के माध्यम से हम उनका स्मरण भी कर रहे हैं और उन्हें श्रद्धांजलि भी अर्पित कर रहे हैं।"[10]

डॉ. राय ने रचना केन्द्रित पत्रिका 'नया प्रस्थान' का भी संपादन किया । 'नया प्रस्थान' के तीन अंक प्रकाशित हुए । तीसरा अंक 'कविता विशेषांक' काफी चर्चित हुआ । समकालीन हिंदी कविता की पूरी झलक इस अंक में परिलक्षित होती है । इनके अंतर्गत उन्होंने गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं का संचयन-संपादन भी किया है, जो पांच अलग-अलग संग्रहों के रूप में प्रकाशित है । महत्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित कवियों के संग्रहों का भी उन्होंने संपादन किया है । उनके द्वारा संपादित ग्रंथों की संख्या इक्कीस है ।

निष्कर्ष:-पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में डॉ० राय का योगदान उल्लेखनीय है। सम्पादक रूप में उनका अनुभव साढ़े चार दशकों का है। इस अवधि में उन्होंने अनेक कविता संग्रहों, आलोचना ग्रन्थों, अभिनन्दन ग्रन्थों और पाठ्यपुस्तकों का सम्पादन भी किया है और दिनकर, नेपाली, प्रेमचन्द पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी संपादित की है। इस प्रकार एक संपादक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ सूची :-

1. संपादकीय, 'उगते सूरज की भूख', साहित्य कुंज-प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1982 ई०, पृष्ठ संख्या-8.
2. भूमिका, वही, पृष्ठ संख्या-9.
3. वही, पृष्ठ संख्या-12.
4. संपादकीय, 'नेपाली की काव्य चेतना', बिहार ग्रन्थ कुटीर, पटना, प्रथम संस्करण, 1992 ई० पृष्ठ संख्या-9.
5. संपादकीय, अन्वेषक (अनियतकालीन), शोध एवं समीक्षा पत्रिका, मुजफ्फरपुर, अंक-3, पृष्ठ संख्या-7.
6. संपादकीय, 'शोध निकष', अर्धवार्षिक शोध पत्रिका, दूसरा अंक, जुलाई-दिसंबर, 2011, पृष्ठ संख्या-5.
7. वही, पृष्ठ संख्या-6.
8. संपादकीय, शोध मनीषा, प्रवेशांक, जुलाई-दिसंबर 2015, पृष्ठ संख्या -9.
9. वही, पृष्ठ संख्या-7.
10. संपादकीय, शोध मनीषा, अंक-2, दिसंबर 2021, पृष्ठ संख्या-10.

•